मायादर्पण

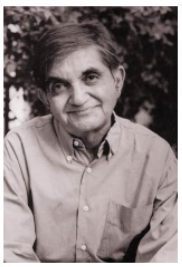

निर्मल वर्मा

हिन्दी ADDA

मायादर्पण

https://www.hindiadda.com/mayadarpan/

छज्जे पर भूरी, जलती रेत की परतें जम गई हैं। हवा चलने पर अलसाए-से धूल-कण धूप में झिलमिल-से नाचते रहते हैं। लड़ाई के दिनों में जो बैरक बनाए गए थे, वे अब उखाड़े जा रहे हैं। रेत और मलबे के ढूह ऐसे खड़े हैं, मानो कच्ची सड़क के माथे पर गोमड़े निकल आए हों।

खिड़की से सबकुछ दीखता है। दिन और शाम के बीच कितने विचित्र रंगों की छायाएँ टीलों पर फिसलती रहती हैं!

दूर से निरंतर सुनाई देता है, पत्थर तोड़ने की मशीन का शोर, दैत्य के घुर्राटों की तरह... घुर्र-घुर्र-घुर्र...

दोपहर की नींद के कच्चे कगारों पर ये आवाजें हल्की लहरों-जैसी थप-थप टकराती हैं। ...तरन अकबकाकर जाग गई। हाथ माथे पर गया तो लगा, पसीने की बूँदों पर बाल चिपक गए हैं, बिंदी की रोली दोनों भौंहों के बीच फैल गई है। उसे लगा, मानो वह अब तक जाग रही थी। सचमुच जागने पर पता चला था कि सोते समय भी वह यही बराबर सोच रही थी। दुपहर की नींद जो ठहरी, आधी आँखों में, आधी बाहर।

आँखें धोईं, बिंदी पोंछ दी, पंप के पानी को चुल्लू में लेकर आँखों में छिड़का। गुसलखाने की खुली खिड़की से मैदान का वह हिस्सा दीखता था, जहाँ बैरकों को ढहाया जा रहा था। आधी टूटी इमारतें, सूखे-भग्न कंकालों-सी खड़ी थीं। सूखी रेत के कण तितीरी धूप में मोतियों-से झिलमिला उठते थे। तरन को लगा, मानो उसके दाँतों के भीतर भी रेत चरमरा रही हो।

देख तो, तरन, बाबू उठ गए हों, तो हुक्का उनके कमरे में रख आ - बुआ ने रसोई से सटी कोठरी से आवाज दी। इतनी उम्र में भी बुआ को सबकुछ याद रहता है। लगता है, जैसे उठते-बैठते, सोते-जागते उनकी चेतना की डोर बाबू की दिनचर्या से जुड़ी रहती है। अपनी कोठरी की देहरी पर ऊँघती रहती हैं बुआ, आस-पास के कार्य-कलाप से सर्वथा निर्लिप्त। इस पर भी उन्हें बाबू की हर जरूरत का आभास कैसे हो जाता है, तरन के लिए यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

शाम होते ही दीवान साहब अधीर आतुरता से मेहमानों की प्रतीक्षा करने लगते हैं। थोड़ी देर के लिए कुछ दूर छोटी लाइन के स्टेशन पर टहलने निकलते हैं, तो भी जल्दी वापस लौट आते हैं, ताकि कोई अचानक उनकी अनुपस्थिति में घर न आ जाए। आते ही बुआ से पूछते हैं कि उनके पीछे कोई आया तो नहीं था? बुआ 'ह-न' के अलावा कोई

उत्तर नहीं दे पातीं। बरसों बाद आज भी उन्हें दीवान साहब से विचित्र अज्ञात-सा भय लगा रहता है। छोटी थीं, तो भी भाई के सामने सिर झुका रहता था, विधवा होने पर दीवान साहब ने कुछ रुपये महीने बाँध दिए थे। अब इस उम्र में, मालकिन के न रहने पर आई हैं, वह भी इसलिए कि इतने बड़े घर में तरन अकेली है। तरन न होती तो क्षण-भर के लिए भी उनका इस उजाड़ अकेले घर में रहना दूभर हो जाता।

धूप मिटते ही बरामदे में जमघट लग जाता है। सरकारी सुपरवाइजर मिस्टर दास से लेकर बडे ठेकेदार मेहरचंद तक काम खत्म होने पर दीवान साहब के बरामदे में कुछ देर के लिए सुस्ताने आ बैठते हैं। और है भी क्या इस उजाड़ बस्ती में, जहाँ दिन की थकान उतारी जा सके? अहीरों के मिट्टी के झोंपड़े, इक्की-दुक्की पान-बीड़ी की दुकानें, ढाबे और ऊपर टीले पर काल-भैरव का मंदिर। ले-देकर एक दीवान साहब का ही तो घर है, जहाँ दूर शहरों से आए प्रवासी भद्र लोग घड़ी-दो घड़ी हँस-बोलकर जी हल्का कर लेते हैं।

- देख तो, तरन, जरा चिलम तो भर लाना दास बाबू के लिए। - दरवाजे की ओर मुँह मोड़कर बाबू ने कहा। उनके चेहरे की मुस्कान में अब ऊब का भाव डूबने लगा था। दास बाबू आए हैं, तो और लोग भी आते होंगे।

- आज इतनी देर कैसे हो गई? भोंपू तो कब का बज चुका।

दास बाबू का थुल-थुल गेंद-सा शरीर आरामकुर्सी में धँस गया। बोले, तो नकली पीले दाँत कटकटा गए - नहर-पार जमीन देखने गया था। वापस लौटते हुए नया पेट्रोल-पंप देखने रुक गया। अब यहाँ पेट्रोल की दिक्कत नहीं रहेगी, दीवान साहब!

तरन भीतर से हुक्का लेकर आई, तो दास बाबू सिमट गए अपने में। पचास से ऊपर उनकी उम्र लाँघ गई है, किंतु किसी स्त्री के सामने आज भी घबरा-से जाते हैं।

तरन के पाँव पीछे मुड़े, तो वह तनिक स्वस्थ हुए। गले को साफ किया, फिर भी जब बोले, तो आवाज खँखारती रही - कुछ दिनों के लिए हरिद्वार-ऋषिकेश क्यों नहीं घूम आते, दीवान साहब? न हो, बिटिया का मन ही बहल जाएगा। दिन-रात अकेले में क्या ऊब नहीं जाती होगी?

दास बाबू तरन का नाम नहीं ले पाते। वह जरा उम्र में छोटी होती, तो उसके सम्मुख इतना घना-सा संकोच न घिर आता; जरा उम्र में छोटी होती, तो नाम सहज-स्वाभाविक हो जाता। किंतु इन दो सीधी, स्पष्ट सीमाओं के बीच आयु की धुरी

समय के जिस दलदल में फँसी रह गई है, उम्र जहाँ न बढ़ती है, न घटती है, उसे क्या कहकर संबोधित करें, दास बाबू कभी समझ नहीं पाते।

बाबू कुछ भी न कहकर चुप बैठे रहे। वह अपने इन मित्रों से हँस-बोल लेते हैं, यह बात और है; किंतु मन में हमेशा उन्हें अपने से छोटा समझते हैं। इतनी घनिष्ठता के बावजूद उन्होंने अपने और दूसरों के बीच कहीं एक लकीर खींच रखी है, जिसे उल्लंघन करने का दुस्साहस कोई भी नहीं कर पाता।

तरन के पाँव, जो दास बाबू की बात पर सहसा देहरी पर ठिठक गए थे, फिर आगे बढ़ गए। दूसरे कमरे में बुआ पुराने कपड़े सी रही थीं। उनकी आँख बचाकर वह अपने कमरे में चली आई। दरवाजा बंद करके भी देर तक दरवाजे के आगे खड़ी रही। बरामदे की आवाजों को नहीं सुनती, सुनती है उस निर्भेद्य मौन को, जो सारे घर में छाया है, जिसके भीतर ये आवाजें पराई, अपरिचित, भयावह-सी जान पड़ती हैं।

खिड़की से बरामदा दीखता है। जब किसी शाम बाबू के मित्र नहीं आते, तो वह अकेले आँखें मूँदे कुर्सी पर बैठे रहते हैं। ऐसे क्षणों में कितना गहन-सा मौन बाबू के इर्द-गिर्द घिर जाता है! उसने कई बार सोचा है कि ऐसे में वह बरामदे में उनके पास जाकर बैठ जाए, इधर-उधर की बातें करे। आखिर इस घर में अब वे दो ही तो रह गए हैं, जो विगत दिनों की स्मृतियों में एक-दूसरे के साझीदार हो सकें। किंतु इतने पर भी कभी पाँव नहीं उठते, सिर्फ खिड़की से ही वह चुपचाप उन्हें देखती रही है।

हवा चलती है, दुपहर-शाम, सायँ-सायँ। मैदानों के टीलों-ढूहों से मिट्टी, रेत के गरम रेले बार-बार दरवाजे खटखटाते हैं और रास्ता न पाकर आँगन में बिखर जाते हैं।

कभी-कभी सड़क को समतल बनाने के लिए बारूद से चट्टानों को फोड़ा जाता। विस्फोट होते ही कँपकँपाता-सा धमाका होता, आर-पार धरती हिल जाती, दूर-दूर तक खतरे की लाल झंडियाँ हवा में लहराती रहतीं।

ऊँघती हुई तरन अचानक अचकचाकर चौंक-सी गई, मानो किसी ने झटका देकर उसे झिंझोड़ दिया हो। शाम का बुझा-बुझा-सा पीलापन चुपके-से सारे मैदान में फैल गया था।

बुआ कमरे में आईं। उसे खिड़की के पास ऊँघते देखा, तो झिड़ककर कहा - कितनी बार कहा है, दोनों वक्त मिलते समय अँधेरे कमरे में नहीं बैठते। शंभू को लेकर तनिक बाहर क्यों नहीं घूम आती?

किंतु उसी समय सीढ़ियों पर भारी पदचाप सुनाई दी। तरन की आँखें अनायास खिड़की की ओर उठ गईं, इंजीनियर बाबू आए थे।

यह इंजीनियर बाबू भी अजीब हैं! इस तरह धाम-धाम करते आते हैं कि सारा घर हिल उठता है।

चार-पाँच महीने पहले इधर सरकारी आर्किटेक्ट होकर आए थे, किंतु यहाँ सब उन्हें 'इंजीनियर बाबू' के नाम से ही संबोधित करते हैं। उनकी चाल-ढाल और बातचीत से ऐसा जान पड़ता है, मानो बरसों से यहाँ रहते आए हों। वह बाबू के रोजमर्रा आनेवाले मित्रों में नहीं हैं, बाबू के मित्र हैं, यह कहना भी कठिन है, शायद इसलिए कि उम्र में वह बाबू से आधे हैं और कोशिश करने पर भी बाबू उनसे हँस-खुलकर बातचीत नहीं कर पाते।

तरन ने हड़बड़ाकर बालों को समेट लिया, दो-तीन बार जल्दी-जल्दी कंघी से उन्हें कहीं धीरे-से दबाया, कहीं हल्के-से उठाया। पाउडर लगाया तो आँखें फड़फड़ा उठीं। माँग के नीचे, माथे के बीचोंबीच बिंदी लगाते हुए तरन का हाथ क्षण-भर के लिए ठिठक-सा गया। सोचा, क्या यह भ्रम है? न, अपने लिए उसे कोई भ्रम नहीं था। चेहरे का आकर्षण, चाहे जिसमें जैसा होता हो, वह जानती थी कि उसमें नहीं है। उसके लिए अब मन क्लान्त नहीं होता। बरसों पहले सड़क पर चलते हुए कोई उसकी ओर देखता, तो तन-मन सिहर उठता था। वह दौड़कर वापस आती थी, घंटों आईने के सामने खड़ी रहती थी। क्या देखते हैं, लोग उसमें? यह प्रश्न कितना विचित्र था और इसका उत्तर पाने के लिए कितनी देर तक दिल धौंकनी की तरह चलता रहता था।

आज जब कभी लोग देखते हैं, तो उसे स्वयं अपने पर आश्चर्य होता है। लगता है, जैसे वह अपने को छोड़कर उनके संग मिल गई है, उन्हीं की कौतूहल-भरी दृष्टि से अपने को देख रही है...

आप अभी तक यहीं बैठी हैं?

तरन एकाएक चौंक-सी गई। दरवाजे पर इंजीनियर बाबू खड़े थे।

- मैं अभी बरामदे में आ रही थी। आप चाय पी चुके?

- चाय फिर किसी दिन पीने आऊँगा, जब आपको बरामदे में आने की फुरसत होगी! ...इस वक्त तो झटपट घर पहुँचना है।

तरन ने उनके सामने चौकी रख दी।

ठहरिए, कुछ खाकर जाइए! अभी तो आप आए हैं!

तरन रसोई की ओर जाने लगी, किंतु इंजीनियर बाबू ने उसे बीच में ही रोक दिया - देखिए, इस वक्त यह झंझट रहने दीजिए। अभी-अभी शहर से लौट रहा हूँ। रास्ते में धूल-गर्द खाई है, उससे बिलकुल पेट भर गया है।

जब कभी इंजीनियर बाबू हँसते हैं, तरन को हमेशा यह महसूस होता है कि इस बस्ती के लोग चाहे आदर-भाव से उन्हें 'इंजीनियर बाबू' कहकर पुकारें, उम्र में वह उससे छोटे ही हैं। पहले-पहल जब उसने इन्हें दीवान साहब की मित्र-मंडली के बीच बरामदे में देखा था, तो गहरा आश्चर्य हुआ था। इतने बड़े बुजुर्गों के बीच कॉलेज के छात्र-से दीखनेवाले यह इंजीनियर बाबू ठीक से फिट नहीं बैठते थे।

आप उस तरफ आईं नहीं, मोन्टू आपके बारे में रोज पूछता है।

मोन्टू इंजीनियर बाबू का नौकर है, जब कभी तरन रेलवे लाइन के पार टहलने जाती है, वह उसे हमेशा मिलता है।

- इस बार आऊँगी। आप रहेंगे?

- अगले हफ्ते आइएगा। चार-पाँच दिन के लिए एकदम बहुत काम आ पड़ा है।

इंजीनियर बाबू जाने से पहले एक क्षण रुके, रूमाल से अपनी ऐनक का शीशा साफ किया।

तरन की आँखें चुपचाप ऊपर उठ गईं और देर तक उसी रिक्त स्थान पर टिकी रहीं, जहाँ कुछ क्षण पहले इंजीनियर बाबू खड़े थे।

कैसे हैं यह इंजीनियर बाबू! ...खट-खट करके जब सीढ़ियाँ उतरते हैं तो सारा घर हिल उठता है।

खिड़की के परे रेलवे लाइन के ऊपर डूबता सूरज खून की लंबी-सी रेखा खींच गया था। ऊँची-नीची चट्टानों के बीच मजदूरों के खोखल, शाम की पीली धूप में छोटे-छोटे लकड़ी के बक्सों-से दिखाई देते थे। काली देवी के मंदिर के आस-पास फीके गुलाबी धुएँ का बादल क्षण-प्रतिक्षण गाढ़ा होने लगा था।

तरन खिड़की से उठकर पलंग के पास चली आई। अधलिखा पत्र तकिए के नीचे अब भी दबा था। सुबह से भाई को पत्र लिखने बैठी है, किंतु अभी तक मुश्किल से पाँच-छह सतरें ही लिख सकी है। जब-जब लिखने की कोशिश करती है, भाई का चेहरा समय की बुझी-बासी परतों को काटता हुआ आँखों के सामने घूम जाता है-वह चेहरा नहीं, जो भाई बाबू से लड़कर घर छोड़ते समय अपने संग ले गए थे। उसकी तो विकृत, भयावह मुद्रा, इतने बरसों बाद आज भी जब कभी याद आ जाती है, तो दिल काँप उठता है; न, वह चेहरा नहीं, एक और शक्ल है, बहुत सादी, बहुत उदास... तब माँ नहीं रही थी। शुरू से ही बाबू का इतना डर था कि जी भरकर रोने में भी झिझक होती थी। और तब भाई आए थे। - देखती नहीं, तरन, बाबू कितने अकेले रह गए हैं! - उन्होंने काँपते होंठों से कहा था - हमें उनके संग रहना होगा। ...कुछ दिनों में फिर सबकुछ पहले जैसा ही हो जाएगा।

और आज तरन सोचती है, कहाँ हो पाया सबकुछ पहले जैसा? उन दिनों वह काफी छोटी थी। भाई क्यों चले गए और बाबू उन्हें क्यों नहीं रोक पाए, तब कुछ भी समझ में नहीं आया था। आज लगता है, माँ एक कड़ी थीं परिवार और बाबू के बीच, उनके जाते ही वे एक घर में रहते हुए भी सहसा एक-दूसरे के लिए अजनबी-से बन गए थे।

बुआ उसे भोजन के लिए बुलाने आईं। तरन के हाथ में कागज देखकर पूछा - क्या कोई चिट्ठी आई है?

- भाई को लिख रही थी। कल से उनका पत्र आया पड़ा है।

- क्या कुछ आने के लिए लिखा है?

- लिखा है, कुछ दिनों के लिए मैं उनके पास चली जाऊँ... क्यों बुआ, चली जाऊँ तो कैसा रहेगा?

बुआ विस्मय से आँखें फाड़ते हुए तरन को देखती रहीं। इतनी दूर आसाम तरन अकेली जाएगी, इसकी कल्पना करना भी पागलपन लगता है।

बहन के लिए इतनी मोह-ममता होती, तो इतने बरसों में क्या एक बार भी वह देखने नहीं आता? - बुआ बोलीं - बाप से लड़ाई है, तो क्या सबसे किनारा कर लेना चाहिए?

दमा के कारण बुआ से अधिक नहीं बोला जाता। जितने शब्द मुँह से बाहर निकलते हैं, उनसे कहीं ज्यादा चढ़ती साँस के भँवर में डूब जाते हैं। बुआ की आँखों में आँसू देखकर

तरन एकाएक निश्चय नहीं कर सकी कि वे उसके भाई के लिए हैं, अथवा खाँसी के कारण खुद-ब-खुद उमड़ आए हैं।

तुम चलो बुआ, मैं अभी आती हूँ। - कमरे में बोझिल-सा सन्नाटा छा जाता है। बरामदे में चहलकदमी करते हुए बाबू की थकी, अनिश्चित-सी पदचाप सुनाई दे जाती है। खिड़की के बाहर मैदान के अँधेरे में मिट्टी के लंबे-लंबे ढूहों की पतली छायाएँ फीकी चाँदनी में उघड़ आई हैं।

एक धुँधली-सी तस्वीर उभर आती है। ढलवाँ घाटियों पर दूर-दूर तक ऊपर-नीचे चाय के बाग फैले हैं... इन्हीं बागों के बीच पेड़ों के झुरमुट के पीछे कहीं भाई रहते होंगे। कहते हैं, वहाँ स्टीमर पर जाना पड़ता है... जाने स्टीमर पर बैठकर कैसा लगता होगा!

तरन उस छोटे-से स्टेशन के सिग्नल की हरी बत्ती देखती रही। पास आती ट्रेन के पहियों की गड़गड़ाहट मकान की दीवारों, मैदान में दूर खड़े घट्टों और टीलों को झिंझोड़-सी जाती है। कुछ देर के लिए पत्थर तोड़ने की मशीन की भयावह घुर्र-घुर्र ट्रेन के पहियों-तले डूब जाती है। इंजन की हेडलाइट के घूमते प्रकाश-वृत्त में आस-पास खड़े झाड़-झंखाड़ झिलमिला उठते हैं... और फिर वही पहले जैसी घनी, बोझिल चुप्पी चारों ओर फैल जाती है।

उस रात बुआ तरन के कमरे में आईं और देर तक बैठी रहीं। तरन की ओर कभी-कभी देख लेतीं और फिर एक लंबी गहरी साँस लेकर सुपारी कतरने लगतीं।

- सो गई, तरन? - बुआ कभी-कभी शंकित स्वर में सिर उठाकर पूछ लेतीं।

- न बुआ, अभी नहीं।

तरन समझ जाती कि बुआ कोई बात शुरू करने से पहले रास्ता टटोल रही हैं। वह चुपचाप आँखें मूँदकर प्रतीक्षा करती रहती।

आज तेरी माँ के कमरे में गई थी - बुआ कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोलीं - मैं तो देखकर हैरत में आ गई, तरन! ...न जाने कितने बरसों से उसने ये सब चीजें जोड़-जोड़कर जमा की हैं! ...उसने ब्याह की साड़ी तक संदूक में अभी तक सँभालकर रखी है।

तरन के मन में हल्का-सा कौतूहल जाग उठा, माँ का भी ब्याह हुआ होगा, इस पर कभी-कभी विश्वास नहीं होता।

तेरे बाबू उन दिनों नए-नए दीवान बने थे। ...बड़ी धूमधाम से उनका ब्याह हुआ था। सिखों के दरबार में एक वही तो हिंदू दीवान थे, जो बेरोकटोक राजा से मिलने जाया करते थे।

बुआ की आँखों में एक बहुत पुराना, कभी न मिटनेवाला सपना तिर आया, हाथ का सरौता चलते-चलते रुक गया। एक दिन रियासत के अंग्रेज रेजिडेंट उनसे मिलने आए थे। मुहल्ले के सब लोग आश्चर्य में अपने-अपने घरों से निकलकर हमारे घर के सामने जमा हो गए थे। किंतु तेरे बाबू अपने नेम-धर्म के इतने पक्के थे कि उनके जाने के बाद उन्होंने स्नान किया और सब बर्तनों को दुबारा धुलवाया था।

तरन उठकर पलंग पर बैठ गई। कितनी बार उसने बुआ के मुँह से ये सब बातें सुनी हैं, किंतु हर बार मन में नए सिरे से उत्सुक हो उठती है। लगता है, जैसे वह चोरी-चुपके, दबे पाँवों किसी विचित्र, मायावी प्रदेश में चली आई है...

- बुआ, तुमने तो उन दिनों बाबू को देखा होगा। क्या तब भी तुम्हें उनसे आज की तरह डर लगता था?

- अरे, कौन नहीं डरता था तेरे बाबू से? ...बुआ के होंठों पर एक म्लान महीन-सी मुस्कराहट सिमट आई - उन दिनों का डर ही तो आज तक चला आता है। ...तेरी माँ को तो मुझसे भी ज्यादा डर लगता था। वह तो बस टुकुर-टुकुर उन्हें देखती ही रहती थी। जिस दिन तेरे बाबू दरबार जाते थे, मैं और वह झरोखे में खड़े होकर लुक-छिपकर उन्हें देखा करती थीं। चूड़ीदार चमचमाता पाजामा, सफेद रेशमी अचकन और सिर पर राजसी, प्याजी रंग की पगड़ी ...हमारी आँखें उन पर से उठती ही न थीं।

बुआ के हाथ सरौते पर टिके रहे, आँखें शून्य के न जाने किस कोने में जाकर अटक गईं।

सोचती हूँ जब आज बाबू तेरे लिए ऊँची जात और बड़े घराने की बात चलाते हैं, तो क्या यह ठीक है? वह बात आज कहाँ रही, जो वर्षों पहले थी? आज अपनी कौन इज्जत रह गई है जो बड़े घर-घराने का लड़का मिले! लेकिन उन्हें यह बात समझाए कौन?

बुआ की आँखों में एक घना, अभेद्य-सा आश्चर्य घिर जाता है, मानो वह खुद न समझ पा रही हों कि जो नहीं रहा, आज भी कैसे जोंक की तरह चिपटा है। मान-गौरव नहीं रहा, जमीन-जायदाद कब की बिक-लुट गई, बाप-दादा की विरासत के नाम पर बचा

रह गया है एक यह मकान और समय की धूल में लदा-फँदा फटे चीथड़े-सा 'दीवान' का खिताब, जिसे चाहे ओढ़ लो, चाहे दिखा लो, पर जो नहीं है, उसे कोई कब तक मानेगा?

बुआ का कंठ भारी हो उठता है, आँखों के आगे गीला-सा झिलमिला तैर जाता है, किंतु मुस्कराहट उनके होंठों पर तब भी जमी रहती है, मानो वह उसे मिटाना भूल गई हों।

किंतु तरन को बात का यह पहलू अब बिलकुल नहीं अच्छा लगता। अच्छा लगता था पहले, जब माँ हँसी-हँसी में वे गहने दिखाया करती थीं, जो उसे ब्याह पर दिए जाएँगे। तब हल्की-सी गुदगुदी होती, ब्याह के लिए नहीं, गहनों के लिए नहीं, बल्कि उस अजीब, अनजानी खुशी के लिए, जो उसकी अपनी थी, जिसमें वह बिलकुल अकेली थी।

तरन फिर लेट गई। खिड़की से सिग्नल की लाल बत्ती दीखती है, दूर अँधेरे में। नहर के पीछे बैरक हैं, जिन पर रात चुपचाप झुक आई है। इन्हीं बैरकों की किसी सँकरी अँधेरी कोठरी में इंजीनियर बाबू रहते होंगे, तरन ने सोचा और आँखें मूँद लीं।

उस पल उसे कुछ भी महसूस नहीं हुआ। यह भी याद नहीं रहा कि बुआ ने उससे कुछ कहा है। टाँगों पर एक हल्की मीठी-सी थकान उतर आई। बरसों पहले की एक धुँधली-सी अनुभूति कहीं भीतर धीमे से उमड़ आई है। लगता है, जैसे वह टब के पानी में अपनी नंगी देह पसारे लेटी है। बीच में कुछ भी नहीं है, कोई भी घटना नहीं घटी है। जो बीता है, जो कुछ भी घटा-बढ़ा है, वह सब पानी के ऊपर है...

- सो गई, तरन? - बुआ ने पूछा।

इस बार तरन स्वयं निश्चय नहीं कर सकी कि वह नींद के इस तरफ है या दूसरी तरफ... पानी के ऊपर छायाएँ तिरती हैं, किंतु उसके नीच कितना ढेर-सा मौन बिखरा है।...

फिर अनेक दिन ऐसे आते हैं, जब दीवान साहब अपने कमरे से बाहर नहीं निकलते। बरामदा सूना पड़ा रहता। खाली कुर्सियों पर सूखी गरम रेत और चूने की परतें इकट्ठी होती रहतीं। बुआ कई बार बाबू के कमरे तक गई हैं और चुपचाप वापस लौट आई हैं। खाना भी वह अपने कमरे में मँगवा लेते। आते-जाते कभी सामने पड़ जाती थी, तो देखते भी नहीं, देख भी लेते तो इस तरह से मानो उसे पहचान पाने में दुविधा हो रही हो। उनकी कोशिश यही रहती कि जहाँ वह बैठी हो, वहाँ न जाना हो, अकस्मात मुठभेड़ भी हो जाए, तो दूसरी तरफ देखने लगें, या रास्ता बचाकर निकल जाएँ।

तरन समझती है, बाबू उससे दूर-दूर क्यों रहने लगे हैं, क्यों घर में तनाव रहने लगा है। पहले, बहुत दिन गुस्सा आता था... अब वह भी नहीं आता, केवल रूखी-सी रिक्तता मन में भर जाती है। कभी-कभी वह सोचती है कि यदि बाबू को उससे इतनी विरक्ति है, तो क्यों नहीं उससे छुटकारा पा लेते? कई बार बुआ ने जोर डालकर बाबू से पत्र लिखवाए हैं, बातचीत आगे भी बढ़ी है, उसकी फोटो और जन्म-पत्री बाहर भेजी गई है, किंतु हर बार बीच में ही सबकुछ रुक जाता है। क्यों रुक जाता है, आज तक तरन की समझ में नहीं आया है...

आज भी तरन जब उस रात की घटना सोचती है, तो सारी देह में झुरझुरी-सी दौड़ जाती है।

उस रोज आधी रात से कुछ पहले बुआ उसके कमरे में आई थीं। वह जाग रही थी। अँधेरे में बुआ की पदचाप धीरे-धीरे उसके पलंग के पास सरकती सुनाई दी थी। वह साँस रोके लेटी रही थी।

बुआ, तुम हो?

बुआ का स्वर काँप रहा था - तूने कुछ सुना?

तरन उठकर बैठ गई। आँखें फाड़ते हुए अँधेरे में धुएँ की काली छाया को देखा।

- क्या बात है, बुआ?

- मुझसे अब इस घर में नहीं रहा जाएगा।

- क्या बात है, बुआ?

- कहना अब कुछ बाकी रहा है, तरन? - बुआ का गला रुँधा-सा गया।

तरन स्तब्ध आँखों से अँधेरे के उस भाग को देखती रही, जहाँ बुआ खड़ी थीं।

- तुमसे कुछ बात हुई थी - तरन ने पूछा।

- मैं तो कमरे में ही बैठी रही थी, वह खुद आए थे। ...मैं कहती हूँ कि जो कुछ उन्हें कहना है, तुझसे क्यों नहीं कहते? ...तू अब बच्ची तो नहीं रही... नाहक मुझे बीच में क्यों घसीटते हैं?

- क्या कहते थे, बुआ? - तरन के स्वर में एक अजीब-सा खोखलापन उभर आया।

- उनकी बात मुझे कुछ समझ में नहीं आती। ...कहते थे, माँ के सामने सबकुछ हो जाता, तो ठीक रहता। फिर देर तक चुपचाप कमरे में घूमते रहे। ...मैंने मौका देखकर कहा कि ऊँचे खानदान को लेकर आजकल कौन बैठा रहता है? अच्छा लड़का मिले तो सबकुछ है। लेकिन मेरी बात सुनते ही वह एक मिनट भी कमरे में नहीं ठहरे। तेजी से अपने कमरे में गए और फटाक से दरवाजा बंद कर लिया। कुछ देर बाद जब बाहर आए तो एकाएक उन्हें पहचान नहीं सकी। आँखें सुर्ख हो रही थीं, माथे पर बाल बिखरे थे, तेरी माँ के मरने के बाद मैंने उन्हें कभी इस रूप में नहीं देखा। हाथ में एक पोटली थी, जो उन्होंने मेरे सामने फेंक दी...

- इसकी माँ के गहने इसमें रखे हैं, इन्हें लेकर वह जहाँ जाना चाहे, चली जाए। लड़का चला गया तो मर नहीं गया; यह चली जाएगी, तो भी मुझे कुछ नहीं होगा। ...मैं तो भौंचक्की रह गई, तरन! क्या अपनी लड़की के लिए कोई ऐसे कहता है?

उस रात बुआ का प्रश्न अँधेरे में भटकता रहा था। वह कुछ भी नहीं समझ पाई थी कि बाबू उससे क्या चाहते हैं। उसे अपने से ही डर लगने लगा था। लगा, जैसे बाबू को उस पर संदेह है, मानो वह भी भाई की तरह किसी-न-किसी दिन उन्हें धोखा देकर चली जाएगी। ...पहले उसने कभी ऐसा नहीं सोचा था, किंतु उस रात बाबू के संदेह ने उसके मन को भी अस्थिर कर दिया। क्या सचमुच वह इस घर में रहना चाहती है? उसने बार-बार अपने से पूछा था और उसे लगा था कि शायद बाबू का संदेह सही हो, शायद उसे उस घर से, घर के साँय-साँय करते कमरों से डर लगता है, जिसे आज तक वह छिपाती आई है - क्या यह सच है?

यह कैसा प्रश्न था, सीधा-सादा सहज, किंतु उन हजारों प्रश्नों में एक, जिनका शायद कोई उत्तर नहीं होता, तरन यह नहीं जानती थी और तभी वह रात-भर तकिए में मुँह छिपाकर थर-थर काँपती रही थी।

उस रात तरन ने अचानक निश्चय कर लिया कि वह कुछ दिनों के लिए भाई के पास जाकर रहेगी...

दूसरे दिन चाहने पर भी तरन बाबू से अपने जाने की बात कहने का साहस न कर पाई। कई बार उनके कमरे तक गई, किंतु बिना कुछ कहे-सुने उल्टे पाँव वापस लौट आई। उसे बाबू से एक विचित्र-सा भय लगता था, जिसे मिटाना कभी संभव नहीं हो पाता। उसने बुआ से कहा कि वह बाबू से जाकर कह दे।

बुआ विस्मित-सी उसकी ओर देखती रही थीं। किंतु बाद में जब उन्होंने उस पर विचार किया, तो लगा कि शायद तरन का चले जाना ही बेहतर है।

उस शाम बाबू ने उसे अपने कमरे में बुलाया था। दरवाजे की देहरी पर तरन के पाँव सहसा ठिठक गए थे, साँस घुटने-सी लगी थी।

- आ जाओ, इधर बैठो। - बाबू का भारी, धीमा-सा स्वर सुनाई दिया।

दीवार के संग तकिए का सहारा लेकर बाबू बैठे थे, चुप, निश्चल। एक बार विचार आया कि जैसे वह दबे पाँव आई है, वैसे ही वापस लौट जाए, किंतु उसके पाँव फर्श से चिपके रहे।

- सुना है, तुम कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहती हो।

तरन चुपचाप बैठी रही। उसे लगा, मानो बाबू भाई का नाम उसके सामने नहीं लेना चाहते, उसने कभी बाबू के मुँह से भाई की चर्चा करते नहीं सुना। जब कभी उसकी चिट्ठी आती है, बाबू बिना पढ़े उसे उसके पास भिजवा देते हैं।

यहाँ मन नहीं लगता, तरन? - बाबू के स्वर में एक निरीह, अबोध-सी जिज्ञासा थी, मानो उन्होंने पहली बार इस संबंध में सोचा हो।

तरन की आँखें एक पल के लिए ऊपर उठीं। उसके भीतर एक अजीब-सी उथल-पुथल होने लगी। शायद बाबू उसे रोक लेंगे, शायद उसके बिना उन्हें भी अकेलापन महसूस होता होगा। उसका दिल तेजी से धड़कने लगा। यदि एक बार भी बाबू उसे रुकने के लिए कहेंगे, तो वह एकदम अपना इरादा बदल देगी। फिर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

किंतु बाबू चुप बैठे रहे। तरन की आँखें नीचे झुक गईं। कमरे की नीरवता फिर बोझिल-सी बन आई।

अच्छा है, जाना चाहती हो, तो चली जाओ। ...मेरी ओर से चिंता मत करना। - बाबू का स्वर बिलकुल स्थिर और भावहीन था।

कमरे से बाहर जाते हुए तरन के पाँव एक बार देहरी पर ठिठके थे, सोचा था, शायद बाबू कुछ कहेंगे, किंतु कमरे में सन्नाटा घिरा रहा...

शायद कुछ भी कहना शेष नहीं रहा था। उस दुपहर तरन अपने कमरे में ही लेटी रही। इतने दिनों से अगर कोई एक इच्छा होती है, तो यही कि जब इच्छा करे, तभी, उसी क्षण नींद आ जाए। कभी-कभी तो लगता है कि इतने बरसों में जागने के, आँखें खोलकर चारों ओर देखने के जो क्षण आए हैं, वे भी जैसे गलत हों, अवास्तविक हों; लगता है, जैसे वे भी पूरी तरह से उसके पास न आए हों, नींद की डयोढ़ी पर खड़े-खड़े वापस लौट गए हों।

शाम को तरन अपने कमरे से बाहर आई। दुपहर-भर लेटे रहने के कारण शरीर भारी लग रहा था। बाहर दिन-भर रेत उड़ी थी, आकाश पर पीली, मटियाली धूल की तहें जम-सी गई थीं। मैदान के चारों ओर टीलों और मिट्टी के ढूहों पर फीकी, बुझी-बुझी-सी धूप चमक रही थी। तरन ने देखा, बाबू अभी बरामदे में नहीं आए हैं। उनके कमरे का दरवाजा अब भी बंद पड़ा था।

बुआ अपनी कोठरी में खाँस रही थीं और मन-ही-मन कुछ बुड़बुड़ाती जाती थीं। जब कभी हवा का झोंका आता था, उस सूने मकान के दरवाजे खटखटा उठते थे...

तरन ने जल्दी-जल्दी चप्पल पहनी। भीतर बुआ से कह आई कि वह कुछ देर टहलने के लिए बाहर जा रही है। न जाने बुआ ने उसकी बात सुनी या नहीं, सीढ़ियाँ उतरते हुए भी तरन को उनकी खाँसी का खँखराता स्वर सुनाई दे जाता था।

दूर-दूर तक रेतीली जमीन फैली थी। अस्त होने से पहले सूरज की पीली किरणें कच्चे सोने की-सी रेत पर बिखर गई थीं। नई सड़क के दोनों ओर रोड़ी-पत्थरों के ढेर छोटे-छोटे पिरामिड-जैसे खड़े थे। उन्हीं के संग-संग चलती हुई तरन पानी के टैंक तक पहुँच गई थी।

सबकुछ कितना दूर और फिर भी कितना अपना था, तरन ने सोचा। कितने वर्षों से वह इन्हें देखती आई है! लड़ाई के दिनों में जब बैरक बनाए जा रहे थे, और मिलिट्री ट्रकें गर्द उड़ाती हुई जब शहर से आती थीं, तब भी वह यहाँ थी, आज... बरसों बाद जब भीमकाय चट्टानों को तोड़कर नई सड़क खोदी जा रही है, बैरकों को ढाया जा रहा है, यह भी वह सुबह-शाम कमरे की खिड़की से देखती आई है...

तरन को यह सोचकर हल्की-सी खुशी हुई कि अब कुछ दिनों के लिए वह इनसे छुटकारा पा लेगी। उसे लगा, मानो उसके भीतर का तनाव बह गया है, और जब उसने दूर से कच्ची सड़क पर इंजीनियर बाबू को आते देखा, तो वह बिना मुस्कराए न रह सकी।

इंजीनियर बाबू टैंक के पास आकर रुक गए। उनके सिर पर सोला हैट धूप में चमक रहा था, कमीज की बाँहें ऊपर चढ़ी थीं, जिनके नीचे नंगी बाँहों के बाल धूल-रेत में सने थे। गले के बटन खुले थे और गले के निचले हिस्से पर पसीने की दो-चार बूँदें दिखाई दे जाती थीं। उनके हाथ में एक लंबा-चौड़ा-सा बोर्ड था। ऐनक के पीछे आँखें वैसी ही चंचल, बेचैन, किंतु निहायत गंभीर दिखाई देती थीं।

- आप यहाँ कैसे खड़ी हैं?

- यों ही जरा टहलने की सोच रही थी। घर में तो उमस के मारे बैठा नहीं जाता। ...आपको मैंने दूर से ही देख लिया था, इंजीनियर बाबू हालाँकि सोला हैट में आपको पहचानना मुश्किल था।

इंजीनियर बाबू हँस पड़े। तरन को याद आया कि जब वह शुरू-शुरू में दरवाजे के पीछे खड़ी होकर बरामदे में इंजीनियर बाबू की हँसी सुनती थी, तो उसे लगता था कि वह उम्र में उससे काफी छोटे हैं।

- इधर शहर जाना हुआ, इंजीनियर बाबू?

- कैसे होगा? - इंजीनियर बाबू अपनी परेशानियों को कुछ इस ढंग से कहते हैं कि तरन को लगता है, मानो उन्हें उनसे काफी सुख अनुभव हो रहा हो।

- कैसे होगा? तीन दिन से कोई लारी नहीं गई है। उतनी दूर न मैं जा सकता हूँ, न बेचारा मोन्टू।

- लारी नहीं गई है? - तरन आश्चर्य से उन्हें देखने लगी - फिर खाने-पीने का सामान कौन लाता होगा? यहाँ तो कोई अच्छा होटल भी नहीं है।

-आप मोन्टू को नहीं जानतीं - इंजीनियर बाबू ठहाका मारकर हँस पड़े - शहर जाने में हम दोनों को ही आलस लगता है, इसलिए उसने यहाँ एक अच्छा-सा ढाबा खोज निकाला है, वहीं से अपने और मेरे लिए दोनों जून खाना ले आता है।

तरन ने इंजीनियर बाबू को देखा। बड़ा विचित्र-सा लगा। कैसे हैं यह इंजीनियर बाबू! अपने शहर, अपने घर को छोड़कर इतनी दूर चले आए हैं। नौकर के अलावा कोई भी तो नहीं है इस उजाड़ प्रांत में, जिसे वह अपना कह सकें।

चलिए, आप टहलने आई हैं न!

ऊँची-नीची, ऊबड़खाबड़ कच्ची सड़क पर वे दोनों चुपचाप चलने लगे। जब कभी हवा का झोंका आता, आँखें मुँद जातीं, मुँह में रेत करकराने लगती, आँखों के आगे सफेद परदा-सा खिंच जाता। मजदूरों के खोखलों और झाड़-फँस के छप्परों के ऊपर काली देवी के मंदिर का दीया जल गया था, हालाँकि धूप अभी तक आस-पास खड़ी चट्टानों और मिट्टी के ढूहों पर रेंग रही थी।

चलते-चलते अचानक इंजीनियर बाबू रुक गए।

आपने वे टीले देखे हैं, उन खोखलों के पीछे? - इंजीनियर बाबू की दृष्टि कहीं दूर जाकर अटक गई थी।

तरन जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

सड़क बनने के बाद उन सबको गिरा दिया जाएगा। रेलवे लाइन के सामने आप जो बंजर भूमि देखती हैं, उसे जोता जाएगा। नहर के इस तरफ कारखाने बनेंगे। आपके देखते-देखते सबकुछ बदल जाएगा।

इंजीनियर बाबू का स्वर एकदम बहुत उत्साहपूर्ण हो गया था। शाम की धूप में उनके चश्मे का शीशा बार-बार झिलमिला उठता था।

और भी न जाने इंजीनियर बाबू ने कैसी-कैसी अजीब बातें कही थीं। तरन विस्मय से देखती रही थी, सोचती रही थी कि देखने में चाहे इंजीनियर बाबू कालेज के छात्र-से लगते हों, जानते बहुत-कुछ हैं। उसे हँसी केवल इस बात पर आई थी कि वह इतना उत्तेजित होकर क्यों बोल रहे हैं, वह कोई उनका विरोध थोड़े ही कर रही है!

रेलवे लाइन के फाटक के पास आकर वे रुक गए। इंजीनियर बाबू एकाएक चुप हो गए थे, मानो शाम के घिरते अँधियारे का सूनापन उन्हें भी छू गया हो। आकाश पर हँसिया चाँद उग आया था, टीलों की ऊँची-नीची रेखाएँ, जो दुपहर के समय तीखी और सख्त दिखाई देती थीं, संध्या के फीके आलोक में बेहद नरम और हल्की पड़ गई थीं, मानो अपना अलगाव छोड़कर वे चुप एक-दूसरे के पास सरक आई हों।

- इंजीनियर बाबू! आप कभी आसाम गए हैं?

- आसाम? नहीं तो। क्यों, वहाँ क्या है?

- कुछ नहीं, ऐसे ही याद आ गया। वहाँ हमारे भाई रहते हैं, आप ही की उम्र के हैं।

- ओह! - इंजीनियर बाबू चुपचाप दूसरी ओर देखने लगे थे।

तरन को यहाँ से लौट जाना था, किंतु वह चुपचाप खड़ी रही थी। हवा का वेग अचानक कम हो गया था। पानी के टैंक के पीछे छोटे-छोटे घरों की नीली छतें शाम की ढलती धूप में चमक रही थीं।

- अब आप वापस लौट जाइए, अँधेरा होने लगा है। कहिए तो मोन्टू को साथ भेज दूँ?

- नहीं, मैं चली जाऊँगी, दूर ही कितना है!

इंजीनियर बाबू रेल की पटरी पार करके धीरे-धीरे मैदान की दूसरी ओर चलने लगे थे। तरन देर तक उनकी ओर देखती रही। डूबते सूरज के रंग का अंतिम आभास भी मिटने लगा था।

वापस लौटते हुए तरन एक बार रुकी थी। उसे लगा था, जैसे बरसों बाद उसके पास एक रहस्यमय, अनिर्वचनीय सुख आया है। चारों ओर घिरते अंधकार की स्निग्ध छाया के बीच उसे अपनी सब चिंताएँ निरर्थक-सी जान पड़ी थीं। वह समझ न पाई कि उसे अब तक जो इतना डर लगता रहा था, वह किसलिए था, किससे था? जिंदगी में केवल एक बार जीना होता है और उसे उसके अलावा कोई और नहीं जिएगा। इंजीनियर बाबू को ही देखो, अपना घर-बार छोड़कर इतनी दूर आए हैं, भला किसलिए, उन्हें कैसा लगता होगा?

मैदान के अँधेरे ऊबड़खाबड़ रास्ते पर चलते हुए तरन को लगा था, जैसे बीते बरसों का बासीपन धुल गया है। उसकी नस-नस में आनंद की लहर दौड़ गई थी।

नहीं, अब वह इस घर में कभी वापस नहीं आएगी... वह अपनी जिंदगी स्वयं जिएगी... उसे यहाँ अब रहने के लिए किसी का मोह पीछे नहीं खींचेगा...

सीढ़ियाँ चढ़ते हुए तरन ने ऊपर देखा, बरामदे में निपट अँधेरा था। सारे घर में सन्नाटा फैला था। केवल रसोई की बत्ती जल रही थी, जिसकी रोशनी की एक धूमिल, फीकी-सी रेखा बाबू के कमरे के दरवाजे पर खिंच आई थी।

दरवाजा खुला था। तरन का दिल तेजी से धड़कने लगा। क्या बाबू अकेले अँधेरे कमरे में बैठे हैं?

वह दबे पाँव दरवाजे के पास गई, काँपते हाथों से दरवाजे को हल्के से पीछे ठेल दिया। आँखें अँधेरे में पहले कुछ भी न पकड़ पाईं, इधर-उधर भटकती रहीं, फिर एक कोने में वे सहसा ठहर गईं।

एकटक देखती रही तरन। निद्रा में चलते मरीज की तरह बाबू कमरे में घूम रहे थे। कभी-कभी अकस्मात कमरे के बीच खड़े हो जाते थे, मानो किसी भूली हुई चीज को याद कर रहे हों। फिर अचानक उनके पाँव मुड़ जाते और वह कोने की ताक में रखी हुई बरसों पुरानी तस्वीर के सामने आ खड़े होते। उभरी हुई नीली नसों से भरे, काँपते, बूढ़े हाथों से वह फ्रेम पर जमी हुई धूल की परतों को साफ करते। धूल कहाँ साफ हो पाती है! केवल उनकी अँगुलियों की छाप तस्वीर के पुराने, जर्द शीशे पर उभर आती है।

कोई शक्ल है, जो व्यतीत के धूमिल परदे पर दीये की लौ-सी झिलमिला जाती है। जार्ज पंचम का सिल्वर जुबली के समारोह के अवसर पर... बरसों पहले जो फोटो लिया गया था, बाबू मंत्रमुग्ध होकर अपलक उसे देख रहे थे। रियासत के अंग्रेजी रेजीडेंट और अन्य राज्याधिकारियों के बीच जहाँ दीवान साहब बैठे हैं, फोटो के उस कोने पर बाबू की आँखें स्थिर, स्तंभित-सी जमी रह गई हैं, मानो वह अपने को ही पहचान पाने का प्रयास कर रहे हों।

क्षण-भर के लिए भ्रम होता है, क्या बाबू सचमुच वहाँ हैं, जहाँ खड़े दीखते हैं? क्या इस घड़ी उनके संग कोई नहीं है?

दरवाजे के पास दीवार से सटकर तरन पत्थर-सी खड़ी रही। आँखों पर एकाएक विश्वास नहीं हुआ। पहली बार तरन ने बुढ़ापे को ऐसी निरावृत्त अवस्था में देखा था और वह बिना हिले-डुले सुन्न-सी खड़ी रही थी। ...बाबू के रूखे-सफेद बाल, पतले, लकड़ी-से हाथों पर नीली नसें, चेहरे की असंख्य उदास झुर्रियाँ, क्या यह सबकुछ उसकी आँखों के सामने, उसके देखते-देखते हो गया है?

बाबू! - तरन के होंठ फड़फड़ा उठे। वह अँधेरे कमरे में बाबू के सामने आकर खड़ी हो गई। जीवन में पहली बार उसने बाबू के इतने निकट जाने का साहस किया था।

बाबू ने धीरे-से सिर ऊपर उठाया, तरन को देखा, ...और देखते रहे।

तुम यहाँ क्यों आईं, तरन? - उनका गला भर्रा-सा आया, आँखों में कातरता छलछला उठी।

तरन कमरे से बाहर चली आई। देर तक अँधेरे बरामदे में खड़ी रही। एक भयावह-सा विचार उसके मस्तिष्क में धीरे-धीरे रेंगता रहा। बाबू उसे कभी नहीं छोड़ेंगे और वह उनसे कभी अलग नहीं हो सकेगी...

वह अकेली रहेगी, किंतु बाबू की छाया से बँधी हुई। ...और बाबू का अकेलापन हमेशा, जिंदगी-भर उससे जुड़कर रहेगा।

वह क्षण, जो आज शाम आया था, रेलवे लाइन के सामने, जब वह इंजीनियर बाबू के संग खड़ी थी, वह शायद गलत था, अपने संबंध में एक सुखद भ्रम से अधिक कुछ नहीं... वह क्षण फिर उसके जीवन में कभी नहीं आएगा।

रात-भर बुआ के कमरे में खाँसने का स्वर सुनाई देता रहा। आधी रात के समय तरन बाबू के कमरे तक गई थी और न जाने कितनी देर तक अँधेरे में दरवाजे से सटकर खड़ी रही थी। उसे लगा था, मानो माँ उस रात दुबारा मर गई हो और जो आँसू बचपन में नहीं बह सके थे वे इतने बरसों से इसी रात की प्रतीक्षा कर रहे थे...

अपने कमरे में वापस आकर तरन चुपचाप खुली खिड़की के आगे खड़ी रही थी। दूर-दूर तक मैदान में फीकी-सी चाँदनी बिखरी थी। रेलवे लाइन के परे तीन-चार बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। इन्हीं के आस-पास कहीं इंजीनियर बाबू रहते होंगे, तरन ने सोचा। उसे उस क्षण इंजीनियर बाबू की बात याद हो आई कि कुछ वर्षों में सबकुछ बदल जाएगा। ...क्या इंजीनियर बाबू सच कह रहे थे? क्या सचमुच सब बदल जाएगा? और तरन के होंठों पर एक रूखी-सी मुस्कराहट फैल गई थी...

खिड़की से हटकर तरन अपने पलंग पर लेट गई। थकान के मारे पलकें भारी हो गई थीं, फिर भी देर तक सोना नहीं हो सका। एक बार बीच में कच्ची नींद का हल्का-सा झोंका आया था, तो लगा था जैसे सामने भाई खड़े हों... वैसी ही शक्ल थी, वही उदास-सी आँखें... और तरन देर तक भाई के बारे में सोचती रही थी। कितने बरसों से उन्हें नहीं देखा है! ...अब तक तो शायद वह बिलकुल बदल गए होंगे...

एक धुँधली-सी तस्वीर आँखों के सामने उभर जाती है, कहीं बहुत दूर, चाय के बागों के झुरमुट में उनका बँगला छिपा होगा। कहते हैं, वहाँ स्टीमर पर जाना पड़ता है। न जाने, स्टीमर में बैठकर कैसा लगता होगा!

https://www.hindiadda.com/mayadarpan/